Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: www.svajrs.com

ISSN:2584-105X **Pg. 95-100**

भारत में समान नागरिक संहिता % समकालीन परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय और विधिक एकरूपता की ओर एक कदम

राजेश कुमार
शोधछात्र , ए-पी- सेन मेमोरियल गर्ल्स पी- जी- कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
ईमेल - rjsranjan93@gmail.com
प्रो. रचना श्रीवास्तव
प्राचार्या ए.पी.सेन गर्ल्स पी.जी.कॉलेज चारबाग, लखनऊ
ईमेल - rachanaapsen@gmail.com

Accepted: 01/11/2025
Published: 07/11/2025 ***DOI: http://doi.org/10.5281/zenodo.17578163***

सारांश

यह शोधपत्र भारत में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता, औचित्य और व्यवहारिक पक्षों का समकालीन सामाजिक एवं विधिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करता है। संविधान के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 44 राज्य को समान नागरिक संहिता स्थापित करने का निर्देश देता है, जिसे सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और विधिक समरूपता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम माना जाता है। धार्मिक विविधताओं पर आधारित व्यक्तिगत विधियों के कारण विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और दत्तक जैसे विषयों पर असमानता बनी हुई है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव विशेष रूप से महिलाओं और अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर पड़ता है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों (शाहबानो, 1985; सरला मुद्गल, 1995; शायरा बानो, 2017) से यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका समय-समय पर UCC की आवश्यकता पर बल देती रही है। इसके अतिरिक्त, विधि आयोग की सिफारिशें (2018, 2023) तथा उत्तराखंड UCC विधेयक, 2024 इसके व्यावहारिक स्वरूप और प्रासंगिकता को उजागर करते हैं।

अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि UCC का कार्यान्वयन भारतीय समाज के बहुलतावादी चरित्र और सांस्कृतिक विविधता के कारण जटिल है। यह जहाँ लैंगिक समानता और धर्मनिरपेक्षता को सुदृढ़ कर सकता है, वहीं अल्पसंख्यकों में सांस्कृतिक पहचान की चिंता भी उत्पन्न करता है। अतः UCC को किसी भी रूप में बहुसंख्यकवादी एजेंडा न मानकर, परामर्श-आधारित, चरणबद्ध और सर्वसम्मति से लागू किया जाना चाहिए। यदि इसे संवेदनशीलता और समावेशी दृष्टिकोण से लागू किया जाए तो यह समानता, न्याय और "विकसित भारत" की परिकल्पना को साकार करने में सहायक सिद्ध होगा।

मुख्य शब्द: *- समान नागरिक संहिता, सामाजिक न्याय, विधिक एकरूपता, लैंगिक समानता, नीति निदेशक तत्व, विधि आयोग।*

प्रस्तावना

भारत एक बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहाँ विभिन्न धार्मिक समुदायों के लिए पृथक व्यक्तिगत कानून प्रचलित हैं। इन कानूनों के कारण विवाह, तलाक, गोद लेने और संपत्ति उत्तराधिकार जैसे मामलों में असमानताएं विद्यमान हैं। समान नागरिक संहिता का उद्देश्य इन असमानताओं को दूर करके सभी नागरिकों को एक समान विधिक ढांचे में लाना है। यह लेख वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक और संवैधानिक संदर्भों में UCC के कार्यान्वयन की संभावनाओं और सीमाओं पर केंद्रित है।

समान नागरिक संहिता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में समान नागरिक संहिता (UCC) की अवधारणा का उद्भव भारतीय संविधान की संरचना के दौरान ही हुआ था। संविधान के अनुच्छेद 44 के अंतर्गत नीति निर्देशक सिद्धांतों में स्पष्ट किया गया कि राज्य का कर्तव्य होगा कि वह समस्त भारत में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करे। इस अनुच्छेद का मूल उद्देश्य भारत में धर्म, जाति, लिंग या भाषा के आधार पर कोई भेदभाव किए बिना सभी नागरिकों को एक समान विधिक संरक्षण प्रदान करना था।

संविधान सभा की बहसों (Constituent Assembly Debates, 1948–49) में यह विषय अत्यंत विवादास्पद रहा। डॉ. भीमराव अंबेडकर, जो भारत के विधिक ढांचे के मुख्य शिल्पकार थे, ने स्पष्ट रूप से समान नागरिक संहिता के पक्ष में तर्क देते हुए कहा था कि *"यदि राज्य सभी नागरिकों को एक समान दर्जा देना चाहता है, तो विधि के समक्ष समानता की भावना को लागू करना अनिवार्य होगा, भले ही वे किसी भी धर्म को मानते हों।"*

हालांकि, मुस्लिम प्रतिनिधियों और कुछ अन्य अल्पसंख्यक समूहों द्वारा यह चिंता व्यक्त की गई कि एक समान कानून व्यवस्था उनकी धार्मिक पहचान और पर्सनल लॉ में हस्तक्षेप करेगी। इस प्रकार संविधान निर्माताओं ने तत्कालीन परिस्थितियों में सामाजिक समरसता और धार्मिक स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए अनुच्छेद 44 को केवल एक नीति निर्देशक तत्व के रूप में शामिल किया, जो विधायी रूप से बाध्यकारी नहीं है।

ब्रिटिश काल में भी पर्सनल लॉ को धर्म-आधारित रूप से लागू किया जाता था। 1772 में वॉरेन हेस्टिंग्स द्वारा लागू किए गए 'हेस्टिंग्स प्लान' के तहत हिंदू और मुस्लिम पर्सनल लॉ को उनके धर्मानुसार मान्यता दी गई थी। यह व्यवस्था औपनिवेशिक शासन के 'बाँटो और राज करो' की नीति का हिस्सा बनी रही। स्वतंत्रता के पश्चात भारत के राष्ट्रनिर्माताओं ने यह सोचा कि राष्ट्र की एकता और विधिक समता के लिए धार्मिक कानूनों के स्थान पर एक समान नागरिक संहिता की आवश्यकता है।

1950 और 1960 के दशक में हिन्दू पर्सनल लॉ में सुधार लाया गया। हिन्दू विवाह अधिनियम, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, हिन्दू दत्तक ग्रहण और पालन-पोषण अधिनियम, और हिन्दू अल्पसंख्यक एवं संरक्षक अधिनियम जैसे कानूनों द्वारा हिन्दू कानूनों को आधुनिक और समानतामूलक बनाया गया। परंतु मुस्लिम, ईसाई, पारसी और अन्य समुदायों के पर्सनल लॉ में तुलनात्मक रूप से कम हस्तक्षेप किया गया। इसका कारण सामाजिक और राजनीतिक रूप से मुस्लिम समुदाय की चिंताओं को लेकर उत्पन्न हुई असहजता थी।

1985 के *शाह बानो प्रकरण* ने इस बहस को पुनः उभारा, जब सुप्रीम कोर्ट ने एक मुस्लिम महिला को गुज़ारा भत्ता दिए जाने का आदेश दिया और समान नागरिक संहिता को लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया। हालांकि, उस समय की सरकार ने मुस्लिम पर्सनल लॉ को प्राथमिकता देते हुए *मुस्लिम महिला (विवाह विच्छेद पर संरक्षण अधिकार) अधिनियम, 1986* पारित किया, जिससे सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को निष्प्रभावी कर दिया गया। इस घटना ने यह दर्शाया कि यह विषय केवल कानूनी या नैतिक नहीं, बल्कि गहराई तक राजनीतिक रूप से भी संवेदनशील है।

इसके पश्चात 21वीं सदी में जब *लॉ कमीशन ऑफ इंडिया* ने 2018 में *"Reform of Family Law"* पर परामर्श पत्र प्रकाशित किया, तब इसमें यह कहा गया कि समान नागरिक संहिता लागू करना तत्काल आवश्यक नहीं है, बल्कि सभी पर्सनल लॉ में सुधार कर समानता प्राप्त करना अधिक व्यावहारिक है। इसी दिशा में उत्तराखंड जैसे राज्यों द्वारा वर्ष 2024 में राज्य-स्तरीय UCC लागू किया जाना एक ऐतिहासिक प्रयोग बन गया है।

इस प्रकार, समान नागरिक संहिता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारतीय विधिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना और राजनीतिक निर्णयों के त्रिवेणी संगम को दर्शाती है। यह न केवल एक संवैधानिक आदर्श है, बल्कि भारत को सामाजिक समानता और विधिक समरूपता की ओर ले जाने वाला एक दीर्घकालिक राष्ट्रीय उद्देश्य भी है।

सामाजिक न्याय की दिशा में एक निर्णायक पहल

भारत जैसे विविधतापूर्ण लोकतंत्र में *सामाजिक न्याय* की अवधारणा केवल आर्थिक संसाधनों तक पहुँच या वर्गीय समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह *लैंगिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और विधिक स्तर पर सभी नागरिकों को समान अधिकार* और अवसर प्रदान करने की अनिवार्यता को सम्मिलित करती है। इसी व्यापक संदर्भ में समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code – UCC) की आवश्यकता सामने आती है। UCC भारतीय समाज को एक समरूप विधिक ढाँचे में बाँधने का प्रयास करती है, जहाँ नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य धर्म, जाति, लिंग या संस्कृति के आधार पर न भिन्न हों, बल्कि वे सार्वभौमिक रूप से सभी पर समान रूप से लागू हों। यह समावेशी न्याय प्रणाली का एक ऐसा आदर्श मॉडल है जो संविधान के सामाजिक उद्देश्यों को व्यवहार में परिणत करता है।

भारत में वर्तमान में लागू *धर्म-आधारित पर्सनल लॉ प्रणाली* सामाजिक विषमता और विधिक असमानता का स्रोत बनी हुई है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और पारसी समुदायों के लिए

अलग-अलग पारिवारिक कानून हैं जो विवाह, तलाक, गोद लेना, संपत्ति उत्तराधिकार और भरण-पोषण जैसे निजी विषयों को भिन्न-भिन्न तरीके से नियंत्रित करते हैं। परिणामस्वरूप, न केवल सामाजिक असमानता गहराती है, बल्कि महिलाओं, विशेषकर मुस्लिम और पारंपरिक हिन्दू महिलाओं, को द्वितीयक नागरिक का दर्जा प्राप्त होता है। उदाहरणतः मुस्लिम पर्सनल लॉ में बहुविवाह की अनुमति और तीन तलाक जैसी प्रथाएँ महिलाओं के साथ विधिक अन्याय को जन्म देती थीं, जिसे अब सुप्रीम कोर्ट द्वारा असंवैधानिक ठहराया जा चुका है।

UCC के पक्ष में सबसे सशक्त तर्क *लैंगिक समानता* है, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 (विधिक समानता), अनुच्छेद 15 (भेदभाव निषेध) और अनुच्छेद 21 (जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार) के मूल में निहित है। धार्मिक आधार पर बनाए गए भिन्न कानून इन अनुच्छेदों के प्रतिकूल हैं क्योंकि वे स्त्री-पुरुष के बीच भिन्न-भिन्न अधिकारों और दायित्वों को वैधता प्रदान करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में UCC एक ऐसा माध्यम है जो महिलाओं के मानवाधिकारों की रक्षा, लैंगिक न्याय की स्थापना और विधिक एकता को सशक्त करता है।

सामाजिक न्याय की परिकल्पना केवल लैंगिक समता या धार्मिक तटस्थता तक सीमित नहीं है। यह नागरिकों के बीच *समान नागरिकता* (Equality of Citizenship) की भावना को भी पुष्ट करता है। जब एक देश के भीतर विभिन्न समुदायों के लिए अलग-अलग कानून होते हैं, तब वह संविधान की धर्मनिरपेक्षता, समता और सामाजिक समरसता की मूल भावना को क्षति पहुँचाते हैं। UCC ऐसे विधिक ढाँचे की कल्पना करता है जिसमें प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह किसी भी धर्म, जाति या समुदाय से संबंधित हो, समान अधिकार और उत्तरदायित्व प्राप्त हो।

विशेषतः वंचित और हाशिए पर पड़े वर्गों—जैसे मुस्लिम महिलाएँ, अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाएँ—को मुख्यधारा में लाने में UCC एक प्रभावी साधन सिद्ध हो सकता है। उदाहरणतः उत्तराखंड राज्य द्वारा वर्ष 2024 में पारित समान नागरिक संहिता अधिनियम में लिव-इन रिलेशनशिप का पंजीकरण, महिलाओं के लिए उत्तराधिकार में समान अधिकार और गोद लेने की समान प्रक्रिया जैसे प्रावधान शामिल किए गए हैं। यह दर्शाता है कि सामाजिक न्याय एक सैद्धांतिक अवधारणा नहीं, बल्कि लागू करने योग्य विधिक नीति भी बन सकता है।

अंततः, समान नागरिक संहिता का कार्य केवल विधिक एकता स्थापित करना नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय की स्थापना, नागरिकता की समानता और धर्मनिरपेक्षता की भावना को व्यावहारिक धरातल पर उतारने की दिशा में एक प्रभावशाली पहल है। यदि इसे संवेदनशीलता, बहुलतावाद और समावेशी संवाद के आधार पर चरणबद्ध रूप से लागू किया जाए, तो यह भारत को एक न्यायसंगत, समान और एकीकृत राष्ट्र के रूप में सुदृढ़ कर सकता है।

न्यायिक दृष्टिकोण और विधायी प्रयास

भारत में समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code - UCC) की स्थापना के विचार को न्यायपालिका ने अनेक ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से न केवल रेखांकित किया है, बल्कि इसके क्रियान्वयन की आवश्यकता को बार-बार रेखांकित भी किया है। भारतीय न्यायिक व्यवस्था ने यह स्पष्ट किया है कि संविधान के अनुच्छेद 44 में वर्णित निदेशक सिद्धांत केवल एक दूरदृष्टि नहीं है, बल्कि यह विधि के समक्ष समानता और धर्मनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा को मजबूत करने का एक प्रमुख औजार भी है। न्यायालयों ने यह माना है कि व्यक्तिगत कानूनों में व्याप्त असमानताएं केवल विधायी सुधार से नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और न्यायिक सक्रियता से भी दूर की जानी चाहिए।

इस दिशा में सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णय अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहे हैं। 1985 में शाह बानो मामला (Mohd. Ahmed Khan v. Shah Bano Begum) ने पूरे देश में UCC की बहस को नए सिरे से सक्रिय कर दिया। एक मुस्लिम महिला को तलाक के बाद गुज़ारा भत्ता मिलने के निर्णय ने यह स्पष्ट किया कि भारतीय विधि धर्म से ऊपर है, और समान अधिकारों की रक्षा उसकी प्राथमिकता है। हालांकि इस निर्णय के विरुद्ध विधायिका द्वारा 1986 में *मुस्लिम महिला (विवाह विच्छेद पर संरक्षण) अधिनियम* पारित कर इसे निष्प्रभावी कर दिया गया, जिससे न्यायपालिका और विधायिका के दृष्टिकोण में टकराव भी सामने आया।

इसके एक दशक बाद 1995 में सरला मुद्गल बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एक कदम और आगे बढ़ाते हुए धर्मांतरण का उपयोग बहुविवाह के लिए करने को संविधान के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप के विरुद्ध बताया और स्पष्ट शब्दों में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता दोहराई। इस निर्णय में न्यायालय ने यह स्वीकारा कि धर्म के आधार पर व्यक्तिगत कानूनों की विविधता न केवल विधिक एकरूपता को बाधित करती है, बल्कि यह सामाजिक न्याय की मूल अवधारणा के विरुद्ध भी जाती है।

इसी क्रम में वर्ष 2017 में शायरा बानो बनाम भारत संघ में *तीन तलाक* को असंवैधानिक घोषित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने महिला अधिकारों की रक्षा और लैंगिक समानता को न्यायिक दृष्टिकोण से नया आयाम दिया। इस निर्णय ने यह स्पष्ट किया कि धार्मिक प्रथाएं यदि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती हैं, तो उन्हें संविधानिक कसौटी पर नहीं टिकने दिया जा सकता। इसके बाद केंद्र सरकार द्वारा *मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2019* को लागू करना न्यायिक फैसले के समर्थन में विधायी क्रियान्वयन का उदाहरण बना।

न्यायालयिक सक्रियता के साथ-साथ विधि आयोग की रिपोर्टें भी इस बहस को दिशा देने में महत्वपूर्ण रही हैं। 2018 की रिपोर्ट ने यह स्पष्ट किया कि भारत जैसे बहुलतावादी समाज में UCC को तत्काल लागू करना व्यवहारिक नहीं है, लेकिन व्यक्तिगत कानूनों में क्रमिक सुधार आवश्यक हैं। वहीं 2023 में 22वें विधि आयोग द्वारा प्रारंभ की गई *जन परामर्श प्रक्रिया* ने यह संकेत दिया कि सरकार अब इस मुद्दे को अधिक समावेशी और व्यापक दृष्टिकोण से देख रही है।

वर्तमान परिदृश्य में 2024 में उत्तराखंड सरकार द्वारा पारित समान नागरिक संहिता विधेयक ने भारत में पहली बार इसे राज्य-स्तर पर वास्तविक रूप में लागू करने का मार्ग प्रशस्त किया है। इस कानून के तहत विवाह, तलाक, लिव-इन संबंध, गोद लेना और उत्तराधिकार जैसे विषयों पर एक समान कानून लागू किया गया, जो सभी नागरिकों पर धर्मनिरपेक्ष रूप से लागू होता है। यह पहल न केवल एक प्रयोगात्मक मॉडल के रूप में देखी जा रही है, बल्कि यह अन्य राज्यों को भी इस दिशा में कदम उठाने के लिए प्रेरित कर रही है।

इन सभी निर्णयों, रिपोर्टों और विधायी पहलों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय न्यायपालिका लगातार यह दृष्टिकोण रखती आई है कि समान नागरिक संहिता सामाजिक समरसता, लैंगिक न्याय और विधिक एकरूपता के लिए अनिवार्य है। हालांकि, इसके कार्यान्वयन की राह में राजनीतिक इच्छाशक्ति, धार्मिक असहिष्णुता और सामाजिक विविधता जैसी चुनौतियाँ अब भी मौजूद हैं। न्यायपालिका की सक्रियता और विधायिका की अनिर्णयता के बीच यह मुद्दा आज भी भारत के संवैधानिक विमर्श का एक ज्वलंत प्रश्न बना हुआ है, जो लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समानता जैसे मूलभूत सिद्धांतों की परख करता है।

विधिक एकरूपता बनाम धार्मिक स्वतंत्रता

समान नागरिक संहिता को लेकर सबसे बड़ी चुनौती धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक विविधता की रक्षा है। अनुच्छेद 25 से 28 भारतीय नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करता है। UCC को जबरन लागू करने का प्रयास सांप्रदायिक तनाव को जन्म दे सकता है। अतः इसका कार्यान्वयन सहमति और संवाद के माध्यम से होना चाहिए।

भारत में समान नागरिक संहिता (UCC) की बहस का केंद्रीय द्वंद्व विधिक एकरूपता और धार्मिक स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित करने को लेकर है। संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 धार्मिक स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देते हैं, जबकि अनुच्छेद 44 एक आदर्श के रूप में सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता लागू करने की बात करता है। यह द्वैत भारतीय लोकतंत्र की बहुलतावादी संरचना और धर्मनिरपेक्ष राज्य के आदर्श के बीच की संवेदनशीलता को दर्शाता है।

भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों के पर्सनल लॉ केवल कानून नहीं, बल्कि धार्मिक पहचान का हिस्सा हैं। इस कारण UCC का प्रस्ताव कई बार धार्मिक हस्तक्षेप के रूप में देखा जाता है। न्यायपालिका ने कई ऐतिहासिक मामलों जैसे *शाह बानो*, *सरला मुद्गल* और *शायरा बानो* में यह रेखांकित किया कि जब धार्मिक परंपराएं संवैधानिक मूल्यों का उल्लंघन करती हैं, तब राज्य का दायित्व है कि वह नागरिकों के समान अधिकारों की रक्षा करे।

वर्तमान संदर्भ में, सामाजिक विविधता को स्वीकारते हुए UCC को समावेशी और परामर्श आधारित प्रक्रिया के माध्यम से लागू करने की आवश्यकता है। विधिक एकरूपता केवल कानून की दृष्टि से समानता नहीं, बल्कि यह सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और समान नागरिकता की नींव है। वहीं धार्मिक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि UCC किसी धर्म विशेष पर आधारित न हो, बल्कि एक धर्मनिरपेक्ष और संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया जाए।

निष्कर्षतः, विधिक एकरूपता और धार्मिक स्वतंत्रता के बीच संतुलन भारत के संवैधानिक ताने-बाने की एक जटिल परंतु आवश्यक चुनौती है। समान नागरिक संहिता को यदि समावेशी, न्यायसंगत और संवेदनशील रूप में लागू किया जाए, तो यह भारत को एक मजबूत धर्मनिरपेक्ष और आधुनिक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने की दिशा में एक ठोस कदम सिद्ध हो सकता है।

समान नागरिक संहिता के समक्ष व्यावहारिक चुनौतियाँ

भारत जैसे बहुधार्मिक, बहुजातीय और बहुभाषी समाज में समान नागरिक संहिता (UCC) को लागू करना न केवल एक विधिक विषय है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संदर्भों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। इस दिशा में कदम बढ़ाते समय अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ सामने आती हैं, जिन्हें समझना और संवेदनशीलता के साथ सुलझाना अनिवार्य है। प्रमुख चुनौतियाँ निम्नवत् हैं:

1. **धार्मिक समुदायों में अविश्वास की भावना:** UCC की अवधारणा को लेकर विशेषकर धार्मिक अल्पसंख्यकों में यह आशंका प्रबल रही है कि इससे उनकी धार्मिक पहचान, परंपराएँ और प्रथाएँ प्रभावित हो सकती हैं। उन्हें यह भय है कि बहुसंख्यक समुदाय के विधिक या सांस्कृतिक मानकों को 'समानता' के नाम पर थोपने का प्रयास किया जा सकता है। यह अविश्वास संवैधानिक मूल्यों के लिए चुनौती उत्पन्न करता है और सामाजिक समरसता के मार्ग में अवरोध बन सकता है।
2. **राजनीतिक ध्रुवीकरण एवं वोट बैंक की राजनीति:** UCC एक संवेदनशील विषय है जिसे अक्सर विभिन्न राजनीतिक दल अपने चुनावी एजेंडे के अनुसार प्रस्तुत करते हैं। परिणामस्वरूप, यह विषय एक *लोकनीतिक विमर्श* की अपेक्षा *चुनावी वाद-विवाद* का हिस्सा बनकर रह जाता है, जिससे व्यापक स्तर पर तथ्यपरक और निष्पक्ष चर्चा बाधित होती है।
3. **पर्सनल लॉ की विविधता:** भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों – जैसे हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी आदि – के लिए पृथक-पृथक व्यक्तिगत विधिक व्यवस्थाएँ (Personal Laws) प्रचलित हैं, जिनमें विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, और गोद लेने जैसे विषय शामिल हैं। इन विभिन्न विधियों को एकसमान विधि के अंतर्गत समाहित करना केवल एक कानूनी प्रक्रिया नहीं, बल्कि यह

गहरे सामाजिक और धार्मिक निहितार्थों से युक्त है।

4. **सामाजिक जागरूकता की न्यूनता:** देश के अनेक क्षेत्रों में अब भी नागरिकों को न तो अपने विधिक अधिकारों की पूरी जानकारी है और न ही समान नागरिक संहिता की अवधारणा को वे सही परिप्रेक्ष्य में समझ पाते हैं। UCC के संबंध में प्रचलित भ्रांतियाँ और गलतफहमियाँ इसके क्रियान्वयन में एक बड़ी बाधा हैं। जब तक जनसामान्य के बीच जागरूकता और समझ का स्तर नहीं बढ़ेगा, तब तक इसका प्रभावी क्रियान्वयन संभव नहीं होगा।
5. **संविधान के अनुच्छेद 25 और 44 के मध्य संतुलन की चुनौती:** भारतीय संविधान एक ओर अनुच्छेद 25 के अंतर्गत धार्मिक स्वतंत्रता का संरक्षण करता है, वहीं दूसरी ओर अनुच्छेद 44 के अंतर्गत राज्य को यह निर्देश देता है कि वह नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता लागू करने की दिशा में कार्य करे। इन दोनों संवैधानिक प्रावधानों के बीच संतुलन स्थापित करना एक गंभीर और सतत चुनौती है, जिसके लिए न्यायिक व्याख्या, विधायी संवेदनशीलता और सामाजिक संवाद की आवश्यकता है।

निष्कर्षतः, समान नागरिक संहिता की अवधारणा को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए आवश्यक है कि इसे किसी भी प्रकार की जल्दबाजी या राजनीतिक पूर्वाग्रह से अलग रखते हुए *चरणबद्ध, सर्वसमावेशी* और *संवेदनशील दृष्टिकोण* के साथ लागू किया जाए। इसके लिए प्रत्येक समुदाय के विचारों, विश्वासों और विशेषताओं का सम्मान करते हुए एक साझा न्यायिक दृष्टिकोण विकसित करना होगा, जिससे भारत एक समतामूलक, न्यायपूर्ण और एकीकृत राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ सके। UCC का प्रारूप तैयार करने में बहुलतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाए।

निष्कर्ष

समान नागरिक संहिता भारत को एक समरस, धर्मनिरपेक्ष और न्यायपूर्ण राष्ट्र के रूप में पुनः परिभाषित कर सकती है। यह केवल कानूनी सुधार नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का भी प्रतीक है। इसके लिए सरकार को सभी पक्षों के साथ समावेशी संवाद, कानून आयोग की सिफारिशों और जनभावनाओं को ध्यान में रखकर कार्य करना होगा।

यह शोध निष्कर्ष समान नागरिक संहिता (UCC) के समकालीन और संवैधानिक परिप्रेक्ष्य का एक व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारत जैसे बहुलतावादी समाज में UCC को लागू करना केवल कानूनी सुधार नहीं, बल्कि सामाजिक समावेश, लैंगिक न्याय और राष्ट्रीय एकता की दिशा में एक संवेदनशील पहल है।

संविधान के अनुच्छेद 44 द्वारा निर्देशित यह संहिता धर्म-आधारित असमानताओं को समाप्त कर, विवाह, उत्तराधिकार और तलाक जैसे मामलों में सभी नागरिकों को समान अधिकार दिलाने का माध्यम बन सकती है। न्यायपालिका के विभिन्न ऐतिहासिक निर्णय, जैसे शाह बानो और शायरा बानो मामले, इस आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

हालाँकि धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के साथ संतुलन बनाए रखना एक बड़ी चुनौती है, परंतु उत्तराखंड मॉडल यह दर्शाता है कि संवाद, सहमति और संवेदनशील नीति-निर्माण के माध्यम से यह संभव है। UCC का उद्देश्य केवल विधिक एकरूपता नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक समरसता की स्थापना भी है। निष्कर्षतः, यदि समान नागरिक संहिता को चरणबद्ध, समावेशी और संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप लागू किया जाए, तो यह "एक भारत – एक कानून" की दिशा में एक ऐतिहासिक और न्यायसंगत कदम सिद्ध हो सकता है।

सुझाव

भारत एक ऐसा देश है जहाँ अलग-अलग धर्म, भाषा और परंपराएँ मिलकर इसकी पहचान बनाते हैं। ऐसे में एक समान नागरिक संहिता (UCC) लागू करना एक बड़ा और संवेदनशील काम है। अगर इसे सही सोच, समझदारी और सहभागिता के साथ आगे बढ़ाया जाए, तो यह देश में समानता और न्याय की दिशा में एक अहम कदम साबित हो सकता है।

इसके लिए कुछ जरूरी सुझाव इस प्रकार हैं:

- समान नागरिक संहिता को लागू करने से पूर्व व्यापक जनसंवाद और शिक्षा अभियान चलाया जाए।
- पर्सनल लॉ में चरणबद्ध सुधारों की रणनीति अपनाई जाए।
- अल्पसंख्यक समुदायों की चिंताओं का संवेदनशीलता से समाधान किया जाए।
- विधायी प्रक्रिया में नागरिक सहभागिता को सुनिश्चित किया जाए।

संदर्भ सूची

पुस्तकें / Books:

- अंबेडकर, बी. आर. (1992). *डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर: लेखन और भाषण (खंड 2).* मुंबई: महाराष्ट्र सरकार, शिक्षा विभाग।
- कश्यप, सुभाष सी. (2004). *भारतीय संविधान और राजनीति.* नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
- ऑस्टिन, ग्रानविल. (2000). *भारतीय संविधान: एक राष्ट्र की आधारशिला.* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

- सहगल, पी. बी. (2010). *भारत में धर्मनिरपेक्षता और समान नागरिक संहिता.* नई दिल्ली: दीप एंड डीप पब्लिकेशन।.
- बक्सी, उपेन्द्र. (2003). *भारतीय विधिक प्रणाली का संकट.* नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग।
- गोस्वामी, अनीता. (2023). *भारत में समान नागरिक संहिता: सामाजिक न्याय की दिशा में एक पहल.* भारतीय विधि समीक्षा, 9(1), 102–119।
- जैसवाल, आर. के. (2021). *समान नागरिक संहिता और भारतीय राजनीति: संवैधानिक बहस के आयाम.* एशियाई विधि एवं नीति जर्नल, 6(2), 56–74।
- मेन्स्की, वर्नर. (2001). *भारतीय कानून में समान नागरिक संहिता की बहस: नए विकास और बदलता एजेंडा.* आधुनिक एशियाई अध्ययन, 35(1), 145–184।
- एग्नेस, फ़्लाविया . (2000). रीडिफाइनिंग द एजेंडा ऑफ द वीमेंस मूवमेंट विदिन अ सेक्युलर फ्रेमवर्क। *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 35*(22), 1872–1876।
- महमूद, ताहिर. (1994). यूनिफॉर्म सिविल कोड: फिक्शन्स एंड फैक्ट्स। *जर्नल ऑफ इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, 36,* 24–38।
- पाराशर, अर्चना .(1989). यूनिफॉर्म सिविल कोड: इज़ इट जस्टिफाइड? *जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, 31*(4), 557–566।
- विधि आयोग भारत सरकार. (2018). *पारिवारिक विधि में सुधार पर परामर्श पत्र.* विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार। https://lawcommissionofindia.nic.in/reports/CPonFamilyLaw.pdf
- विधि आयोग भारत सरकार. (2023). *समान नागरिक संहिता पर रिपोर्ट।* नई दिल्ली: विधि आयोग।
- नीति आयोग. (2020). *भारत में लैंगिक न्याय और कानून सुधार.* नई दिल्ली: भारत सरकार।
- भारत का उच्चतम न्यायालय. (1985). *मो. अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम,* ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 945।
- भारत का उच्चतम न्यायालय. (1995). *सरला मुद्गल बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1995 एस.सी. 1531।
- भारत का उच्चतम न्यायालय. (2017). *शायरा बानो बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 4609।
- उत्तराखंड सरकार. (2024). *समान नागरिक संहिता, उत्तराखंड विधेयक, 2024.* विधि विभाग, उत्तराखंड सरकार।

News Article

- Times of India News Desk. (2025, January 27). *Uniform Civil Code implemented in Uttarakhand: Rules released, portal launched*. *Times of India*. https://timesofindia.indiatimes.com/india/uniform-civil-code-implemented-in-uttarakhand/articleshow/117595906.cms
- NDTV News Desk. (2025, January 27). *Uttarakhand is first state to enforce Uniform Civil Code. What changes*. *NDTV*.https://www.ndtv.com/india-news/uttarakhand-is-first-state-to-enforce-uniform-civil-code-what-changes-now-7567440
- Hindustan Times. (2025, January 27). *Historic day, says Dhami as Uniform Civil Code comes into force in Uttarakhand*. *Hindustan Times*. https://www.hindustantimes.com/india-news/historic-day-says-dhami-as-uniform-civil-code-comes-into-force-in-uttarakhand-101737972225481.html
- Times of India. (2025, April 8). *Gender justice: SC judge cites Shah Bano ruling in international forum, underscores need for UCC*. *Times of India*. https://timesofindia.indiatimes.com/india/gender-justice-sc-judge-cites-shah-bano-ruling-in-international-forum-underscores-need-for-ucc/articleshow/120081145.cms

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, conclusions, and opinions expressed in articles published in this journal are exclusively those of the individual author(s) and contributor(s). The publisher and/or editorial team neither endorse nor necessarily share these viewpoints. The publisher and/or editors assume no responsibility or liability for any damage, harm, loss, or injury, whether personal or otherwise, that might occur from the use, interpretation, or reliance upon the information, methods, instructions, or products discussed in the journal's content.

****